ताङम के मौखिक साहित्य की दशा: वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

तुनुङ ताबिङ

अरुणाचल प्रदेश बहुल जनजातियों वाला प्रदेश है, जहाँ अनेक जनजातियों की भी कई उप जनजातियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। प्रत्येक जनजाति अथवा उपजनजाति की भाषा-बोली एवं मौखिक साहित्य है। उनकी भाषा-बोली एवं मौखिक साहित्य उनके समाज तथा संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। मौखिक साहित्य किसी भी जनजाति की वह कड़ी है जो उन्हें अपने पूर्वजों से, अपनी अस्मिता से जोड़े रखती है। 'ताङाम आगोम' भी ताङाम उपजनजाति का प्रतिनिधिकर्ता है जो अपनी भाषा-बोली के शब्दों से अपनी पहचान का परिचय देता है। अर्थात् आदी जनजाति की सभी उपजनजातियों की बोली से ताङाम की जुबान थोड़ी अलग है। कहने का तात्पर्य यह है कि ताङाम भाषा-बोली की अनेक शब्दावलियों व उच्चारण प्रवृत्ति आदी जनजाति की अन्य उपजनजातियों से काफी भिन्न जान पड़ती है। किसी भी जनजाति अथवा उपजनजाति की भाषाई दृष्टि से यह अपने आप में बहुत बड़ी विशेषता है। परंतु जब इस विशेष बोली को बोलने वालों की संख्या बहुत कम हो और ऊपर से आधुनिकीकरण का प्रभाव पड़ता जा रहा हो, तो यह उस उपजनजाति के लिए एक विचारणीय स्थिति बन जाती है। अरुणाचल प्रदेश एक ऐसा प्रदेश है जो अपनी प्राकृतिक सुषमा की छटा से सभी के मन को मुग्ध कर देता है, परंतु साथ ही अनेक जनजातीय रंगों की सुंदरता से सबका मन भी जीत लेता है। अरुणाचल प्रदेश जनजाति बहुल प्रदेश है, जहाँ छब्बीस मुख्य जनजातियों एवं अनेक उपजनजातियों का निवास है। इसे 'लघु भारत' जैसे एक समृद्ध ईकाई के रूप में भी जाना जाता है। ऐसा इसलिए क्योंकि भारत की विविधता में एकता के रूप, गुण व स्वर भली-भांति यहाँ दृष्टिगोचर हो जाते है। यहाँ भी त्योहारों के अनेक रंगों को एक साथ देखा जा सकता है। यहाँ की प्रमुख जनजातियों जैसे-आदी, न्यीशी, गालो, मोनपा, अपातानी, तागिन, इदु, मिश्मी, कोरो आका, मिजी, हुसो आका, सिंग्फो आदि सभी की अपनी एक प्रांतीय या यों कह ले कि स्वतंत्र भाषाएँ हैं। इन जनजातियों की अनेक उपजनजातियाँ भी हैं तथा इन उपजनजातियों की संख्या लगभग सौ से अधिक मानी जाती है। अधिकांश उपजनजातियों की अपनी बोली विशेष होती है। किसी भी उपजनजाति की बोली से उनके समुदाय की पहचान बड़े ही आसानी से किया जा सकता है। अन्य शब्दों में कहें, तो ये बोलियाँ अपने समाज व समुदाय का प्रतिनिधित्व करती हैं। भाषाओं की भिन्नता, त्यौहार, रीति-रिवाज, परंपरा, मान्यताएँ, वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन आदि की विविधताओं के बावजूद भी यहाँ का जनजीवन एक ऐसे सूत्र में बंधा हुआ है, जो सभी को एक-दूजे से जोड़े रखता है। वह सूत्र है-प्रकृति, उनकी पारंपरिक संस्कृति एवं उनका मौखिक साहित्य।

'मौखिक साहित्य' यानी मुंह से सुनाई जाने वाली वैसी वाचिक प्रवृत्तियाँ जिसे हम कथा, कहानी, गाथा, कहावतें, मुहावरे आदि के नाम से जानते हैं, जिसे किसी अन्य व्यक्ति के मुंह से सुनकर हम उसका आनंद उठा पाते हैं, जिनमें किसी लोक जीवन के नीति-नियम, मान्यता, विश्वास तथा शिक्षा आदि की झलकियाँ देखने को मिलती हैं। 'मौखिक साहित्य' की तुलना उस धारा से करना गलत न होगा, जो सदैव सतत रूप से प्रवाहित होती रहती है। यह हमारे जीवन के विकास एवं गतिमयता के गीत गाते हुए प्रवाहित होता रहता है; साथ ही साथ जीवितों को जीविका भी प्रदान करता है। ठीक इसी प्रकार 'मौखिक साहित्य' वह आंतरिक भावधारा है, जो

पीढ़ी-दर-पीढ़ी किसी भी लोक, समाज व समुदाय का पथ प्रदर्शित करता है। वह अपने शब्दों में किसी भी लोक एवं समुदाय आदि की मूल-पहचान, अस्तित्व, अस्मिता, उनके पूर्वजों की देन, बलिदान इत्यादि के स्वर को ध्वनित कर उनकी जीवंत कथा कहता आया है। इनमें अनादर्श, कृत्रिमता आदि बहुत कम देखने को मिलती है, या यों कहें कि इन त्रुटियों के लिए मौखिक साहित्य में कोई स्थान नहीं है, बल्कि वह स्वतंत्र होकर, निर्बाध और निश्छल रूप से अपने जन-जीवन की पहचान उसके गौरव-गान को अपने उत्तर-पीढ़ी को सौंपता जाता है, जिस प्रकार उनके पूर्वजों ने उन्हें सौंपी थी जो कि गौरव से भरा एवं दायित्वपूर्ण विरासत है।

अरुणाचल प्रदेश की अन्य जनजातियों एवं उपजनजातियों के समान ही आदी जनजाति की भी प्रमुख चौदह उपजनजातियाँ हैं। उन उपजनजातियों में से एक उपजनजाति है-'ताङाम'। 'ताङाम' आदी जनजाति की उपजनजातियों में से अल्पसंख्यक उपजनजाति के रूप में जानी जाती है जिसकी जनसंख्या राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, ईटानगर के अरुणाचल जनजातीय अध्ययन संस्थान के अंतर्गत 'Center for Endangered Language' (CFEL, 2016) के अनुसार केवल 253 बताई गई है। परंतु टी. के. भट्टाचार्जी द्वारा लिखित 'द ताङाम' (1975) के अनुसार स्पष्ट रूप से हम देख पाते हैं कि किसी अतीत में इस उपजनजाति की जनसंख्या लगभग दो हजार के आस-पास थी। इससे यह प्रमाणित होता है कि इसकी जनसंख्या निरंतर घटती जा रही है और इनकी आबादी के साथ-साथ इनका साहित्य भी विलुप्ति के खतरे से जूझ रहा है। अब ऐसी परिस्थिति में उनका मौखिक साहित्य ही एक मात्र ऐसा माध्यम है जिसके आधार पर वे अपने मूल की, अपने अस्तित्व की रक्षा करते आ रहें हैं। अपने अस्मिता को बनाये रखने के लिए उनकी भाषा एवं उनका मौखिक साहित्य ही एक ऐसा 'पुल' है जिसने अब तक उन्हें उनके मूल से जोड़े रखा है तथा इसी अंतर्सेतु के कारण ही एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को अपना अस्तित्व बोध कराता आ रहा है। परंतु उनका यह 'भाषायी पुल' जिससे इस समुदाय के पीढ़ियों की आत्मिक गाथा जुड़ी हुई है, इसकी गांठें समय के अंतराल में धीरे-धीरे घिस-घिसकर पतली होती जा रही हैं। आधुनिकता का प्रभाव उनकी संस्कृति एवं परंपराओं पर दिन-ब-दिन हावी होते दिखाई दे रहा है। आज स्थिति यह है कि ताङाम के इस 'भाषायी पुल' के बचाव के लिए उनके साहित्य को एक मुकम्मल सेतु का रूप देना अनिवार्य हो गया है; और वह सेतु है 'लिखित साहित्य' जिसके माध्यम से उनके पूर्वजों व उनके साहित्य को लिपिबद्ध कर संरक्षित किया जा सकता है।

आधुनिकता एवं शहरीकरण का प्रभाव इतना बढ़ता जा रहा है कि सभी उसी के रंग में रंगने लगे हैं। विकास लोगों को सुख-सुविधा देता तो है, लेकिन कहीं न कहीं अभिशापित भी करता है। आधुनिकता की मार विशेष रूप से प्रांतीय तथा जनजातीय जनजीवन पर अधिक खतरनाक ढंग से पड़ती जा रही है। शिक्षा के लिए, रोजगार के लिए, बेहतर जीवनयापन आदि के लिए समकालीन समय में सभी शहरों में शरण खोजने लगे हैं। अंग्रेजी-हिंदी भाषाओं का प्रभाव स्थानीय लोगों पर हावी होती जा रहा है। किसी भी भाषा को सीखना या जानना बुरी बात नहीं है, यदि हम भाषायी ज्ञान एवं साहित्यिक दृष्टि से देखें तो; जब यह हमारे अस्तित्व और निज पहचान के आगे एक बड़ा-सा प्रश्नचिह्न लगे, तब नि:संदेह हमारी भाषा-बोली, हमारी संस्कृति, हमारा साहित्य आदि इस प्रश्नचिह्न का जवाबी प्रत्युत्तर बनकर उभरते हैं।

ताङाम उपजनजाति के मौखिक साहित्य पर एक तो अल्पसंख्यकता के काले बादल मंडरा रहे हैं, तो दूसरी ओर आधुनिकीकरण की मार से वे बचते-बचाते फिर रहे हैं। इस बात से अनजान कि उनकी भाषा, उनकी

संस्कृति, उनकी परंपराएँ ही उन्हें उनकी भावी पीढ़ियों द्वारा अपनी अस्मिता के पहचान के प्रश्नों के वार से बचाएँगी। इस गंभीर प्रश्न से बेख़बर युवा पीढ़ी आधुनिक रंग-रोगन में ढलकर अपने ऐतिहासिक संस्कृति व अस्मिता को नजरअंदाज करते जा रहे हैं जो सही नहीं है। उदाहरण के लिए-'आदी समुदाय में 'उनयिंग-आरान' पर्व (नूतन-दिवस) 7, 8, 9 मार्च को लगातार तीन दिनों तक मनाए जाते हैं। हालांकि आदी जनजाति की कुछ उपजनजातियाँ इस त्यौहार को अपने परिवेश की सुविधा अनुसार मनाते हैं। तब भी इस पर्व के दौरान एक विशेष स्थानीय गीत 'याकजोङ' गाते हुए सभी साथ-साथ क्रमबद्ध पंक्ति में नृत्य करते हुए घर-घर जाकर चावल, मांस (विशेषकर चूहें का मीट) तथा रुपए मांगने का रिवाज निभाते हैं। बहरहाल, यह बताना वाजिब होगा कि घर के सदस्य स्वेच्छा से ये सभी वस्तुएं देने के लिए 'याकजोङ' का बेसब्री से इंतजार करते हैं। 'याकजोङ' के दौरान 'रङगीङ' में जो पारंपरिक गीत गाया जाता है वह इस प्रकार है-

"याकजो ङ सोसोर अ,
याकजो ङ किलु याकजोङ, याकजो ङ सोसोर अ,
याकजो ङ मोमान याकजोङ, याक्जो ङ सोसोर अ,
कोलो आमबिन पुआ को कोलो,
याकजो ङ सोसोर अ,
कोलो कबुंङ गुतुन नाको कोलो,
याकजो ङ सोसोर अ,
कोलो कोजे पाबार को कोलो,
याकजो ङ सोसोर अ,
याकजो ङ सोसोर अ..."

इस गीत का भावार्थ यह है कि इस नवीन दिवस के अवसर पर 'याकजोंग' यानी इस महत्वपूर्ण पर्व का प्रतिनिधित्व करने वाला वह समूह आ गया है, जो आपके घर नवल वर्ष की शुभकामनाओं सहित आनंद व मस्ती लेकर आए हैं। अतः एक कटोरी भर चावल, चूहे का मांस और साथ ही रुपए स्वेच्छा से देने का आग्रह करते हैं। परंतु, यदि किसी कारणवश किसी परिवार के पास इनमें से एक, दो या कोई भी वस्तु उपलब्ध न हो तो यह अनिवार्य नहीं की उसे देना ही हो, हालाँकि ऐसी स्थिति बहुत कम होती है। इन तीनों वस्तुओं का प्रतीकात्मक रूप इस प्रकार है- चावल से तात्पर्य खेत की उर्वरता, मांस से तात्पर्य शिकार करने की क्षमता तथा रुपए से तात्पर्य सुख व समृद्धि।

कहने का अभिप्राय है कि यह त्यौहार आज भी बड़े ही उत्सुकता एवं उमंग के साथ आदी समुदाय में मनाया जाता है। दुर्भाग्यवश इस प्रथा के दौरान गाया जाने वाला प्रसिद्ध 'याकजोङ गीत' का पालन अभी तक केवल बुजुर्ग ही करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इन दिनों इस प्रसिद्ध याकजोङ गीत के स्थान पर बच्चे आधुनिक सिनेमा के गीत गाने में अधिक आनंद उठाने लगे हैं जो उनके इस पारंपरिक प्रथा के विलुप्त होते जाने की निशानी है। एक प्रसिद्ध कहावत है कि 'आज के युवा, कल की पहचान हैं।' अतः हमारे समाज का भविष्य ही जब अपनी पहचान, अपने पूर्वजों की अस्मिता को भूलकर जब आधुनिक गीतों पर झूमने लगे तो किसी भी समुदाय के

लिए भविष्य की चिंता करना आवश्यक बन जाता है। ताङाम के मौखिक साहित्य की सुंदरता एवं वर्तमान दुर्दशा पर चिंता जताते हुए ताङाम की स्वर्गवासी वृद्ध महिला जोमिङ दाजी ने कोमबोङ दाराङ द्वारा डॉक्यूमेंट्री फिल्म 'ङोक मिरी दल्लोक्के योयो गागा गोकतुआनाम किदिङ' निर्माण हेतु सामग्री संकलन के दौरान गाकर सुनाया था। उस गीत की बोली एवं भावार्थ इस प्रकार है-

"चीचीङा सिपुना गिअ्दाक्कु,
आरो पेजिन चीचीङा चिपुने गिदाक्कु

(अर्थात, हाँ मैं उन शब्दों के साथ मरने वाली हूँ,
इसीलिए तुम सभी मेरी बात ध्यान से सुनो....)

आरो बिङुआ, चीची या चीपुने योद्न्नअ,
लुतुना पोगिअ् प, दोदिअ् बिकुआ..."

(अर्थात, मैं उन लोड़ियों एवं गीतों के साथ मरने वाली हूँ जो मैं अपनी भाषा में गाया करती थी, इसीलिए मैं तुम सभी के साथ बैठकर अपनी कथा गाकर सुना रही हूँ।)

"लको प दुदुम हिदोकु ला,
तुपेनह लेको पे, दिदुना बिकु

(अर्थात, कितना चाहती हूँ कि मैं फिर से बचपन जिऊँ,
और इस गीत को गाते हुए फिर से बड़ी होऊं।)

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में जो लोग 'ताङाम' उपजनजाति' की अस्मिता को मौखिक रूप में रक्षित करते आए हैं, वे कराल काल के गाल में कवलित होने की अवस्था में पहुँच चुके हैं। वे अपने पूर्वजों की पहचान को, अपने अस्तित्व की पहचान को कायम रखने हेतु जद्दोजहद करते दिखाई पड़ रहे हैं। जबकि ताङाम युवा पीढ़ी अपनी बोली एवं साहित्य की दशा से अनजान अपने जीवन से अपने ही वजूद को दरकिनार करती जा रही है। अतः ताङाम की वर्तमान दशा को मद्देनजर रखते हुए शीघ्र अति शीघ्र उनके मौखिक साहित्य, जिनमें उनके अस्तित्व की, उनके मूल की पहचान रसी-बसी हुई है; उस पर ठोस कदम उठाना अनिवार्य हो गया है। सबसे गंभीर एवं विचारणीय बात यह है कि वर्तमान में विलुप्ति की यह चुनौतीपूर्ण स्थिति केवल आदी जनजाति के इस 'ताङाम' उपजनजाति की ही नहीं बल्कि अधिकांश अरुणाचली जनजातीय व उनकी उप जनजातियों की भी दिखाई पड़ती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'The Tangams' (1975) by Tarun Kumar Bhattacharjee
2. CFEL 2016, Newsletter AITS (RGU)
3. 'NgokMiriDelokke Yoyo Gaga Goktuanam Kiding' (2018), Documentry Film by Kombong Darang
4. 'The Aspects Of Padam-Minyong Culture' (1960) by Sachin Roy
5. 'The Tangam; a Re Study on Dwindling Subtribe of Adi' (2010), by Shri, GammarKakki, M. Phill.
6. 'The Tangams: An Ethnolinguistic study of the Critically Endangered Group of Arunachal Pradesh' (2020) by CFEL, AITS, RGU and Himalayan Publishers

*(**लेखकीय परिचय :** डॉ. तुनुङ ताबिङ राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग से पीएचडी कर चुकी हैं तथा वर्तमान में आप शासकीय महाविद्यालय, रोईंग, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में अतिथि सहायक प्रोफेसर हैं। आपका पहला काव्य-संग्रह गोमPI॑-गोमुK॑ नाम से प्रकाशित है। आप रचनात्मक लेखन में लगातार सक्रिय हैं।*
मोबा: 9862438820, ई-मेल : tabingtunung@gmail.com)